आवश्यकसूत्र : विभाव से स्वभाव की यात्रा

साध्वी नगीना श्री जी

साध्वी जी ने भाव प्रतिक्रमण को साधना में तेजस्विता लाने का हेतु बताने के साथ छः आवश्यकों के क्रम की वैज्ञानिकता भी प्रस्तुत की है। जैन धर्म के साथ अन्य धर्मों में भी प्रतिक्रमण का स्वरूप प्रकारान्तर से प्राप्त होता है, यह जानकारी भी प्रस्तुत लेख में दी गई है। *-सम्पादक*

साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सबके लिये आवश्यक का ज्ञान अनिवार्य है।[1] अनुयोगद्वार में आवश्यक के आठ अभिवचन हैं - आवश्यक, अवश्यकरणीय, ध्रुवनिग्रह, विशोधि, अध्ययन षट्कवर्ग, न्याय, आराधना, मार्ग। इन नामों में किंचित् भेद प्रतीत होने पर भी अर्थाभिव्यञ्जना में साम्य है।

आवश्यक सूत्र कलेवर में भले छोटा हो, पर सबसे अधिक व्याख्याएँ इस पर लिखी गई हैं - निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, स्तबक और हिन्दी विवेचन। श्रमणों के लिये आवश्यक अवश्यकरणीय हैं। नहीं करने वाले श्रमण धर्मपथ से च्युत हो जाते हैं। यह आवश्यक निर्युक्ति में स्पष्ट है।[2]

छः आवश्यकों का वैज्ञानिक क्रम

आवश्यक के छह अंग हैं- १. सामायिक २. चतुर्विंशतिस्तव ३. वन्दना ४. प्रतिक्रमण ५. कायोत्सर्ग ६. प्रत्याख्यान। आवश्यक का यह क्रम कार्य-कारण भाव पर आधारित होने से वैज्ञानिक है। सर्वप्रथम सामायिक का स्थान है। सामायिक अर्थात् समताभाव। सामायिक समता का लहराता समंदर है।

समता की प्रतिष्ठा किये बिना गुणों के सुमन नहीं खिलते। भीतर में वैषम्य की ज्वालाएँ प्रज्वलित हों वह गुणोत्कीर्तन के लिये योग्य नहीं बनता। न दूसरों के उदात्त गुणों का संग्राही बनकर अर्हता पा सकता है। अतः समता के बाद गुणोत्कीर्तन का स्थान उचित है।

साधक भक्ति की भागीरथी में अवगाहन कर अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कर लेता है। महापुरुषों का जीवन अनेक विशेषताओं का प्रतिष्ठान है। उनके गुणकीर्तन से हृदय पवित्र होता है। वासनाएँ शांत होती हैं। तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर सकता हैं। तीर्थंकर साधना मार्ग के आलोक स्तम्भ हैं। जिस घर में गरुड पक्षी रहता हो वहाँ साँप नहीं आता। वैसे ही हृदय में वीतराग स्तुति रूप गरुड उपस्थित है तो पापों का साँप आ नहीं सकता। स्तवना से दर्शन की विशुद्धि और श्रद्धा निर्मल बनती है।

साधक तीर्थंकर की स्तुति के बाद गुरु को वंदन करता है। गुणों को अपने में संक्रान्त करने का माध्यम है वन्दना। वन्दना वही करेगा जो अहं से मुक्त है। वन्दना करने वाला स्वयं विनय गुण से विभूषित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। वन्दना करना नम्रता की अभिव्यक्ति है। नम्रता और ऋजुता सहचारी हैं। धर्म की पृष्ठभूमि सरलता है। सरल व्यक्ति का जीवन खुली पुस्तक की तरह है। कोई भी कहीं से पढ ले, वहाँ न लुकाव है, न छिपाव।

सरल व्यक्ति अपने दोषों का प्रतिक्रमण करता है इसलिये वन्दना के बाद प्रतिक्रमण का निरूपण है। आचार्य अकलंक ने प्रतिक्रमण का अर्थ अतीत के दोषों से निवृत्त होना किया है।[3] हरिभद्रसूरि के अनुसार अशुभ प्रवृत्ति से पुनः शुभ प्रवृत्ति में आना प्रतिक्रमण है।[4]

अशुभ योग से व्रत में छेद उत्पन्न हो जाते हैं। प्रतिक्रमण से व्रत के छेद पुनः निरुद्ध हो जाते हैं। सूत्रकार ने व्रत-छेद निरोध के पाँच पक्ष बतलाये हैं -

१. आस्रव का निरोध हो जाता है।

२. अशुभ प्रवृत्ति से होने वाले चरित्र के धब्बे समाप्त हो जाते हैं।

३. आठ प्रवचनमाताओं में जागरूकता बढ़ जाती है।

४. संयम के प्रति एकरसता या समापत्ति सध जाती है।

५. समाधि की उपलब्धि होती है।

अनादि काल से मानव कषाय, प्रमाद एवं अज्ञानवश मूर्च्छा में बाहर भटक रहा है। स्व की उसे पहचान नहीं है। प्रतिक्रमण नीड़ में लौटने की प्रक्रिया है। 'The Coming back' आन्तरिक व्यक्तित्व के विकास की समग्रता है। अन्तरंग की खुली आँखों में अनोखे आनंद की खुमार है। भवरोग मिटाने की परमौषध है।

आचार्य भद्रबाहु ने कहा- ''साधक प्रतिक्रमण में मुख्य रूप से चार बातों का अनुचिंतन करे'', यथा-

१. स्वीकृत नियम-उपनियमों की विशेष शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण करे।

२. साधक सजग रहता है, किन्तु असावधानी के कारण महाव्रत या अणुव्रत में स्खलना हो गई हो तो प्रतिक्रमण अवश्य करे।

३. यदि आत्मा आदि तत्त्व प्रत्यक्ष नहीं होने से अश्रद्धा हो गई हो तो प्रतिक्रमण अवश्य करे।

४. हिंसा आदि दुष्कृत्यों का प्रतिपादन न करे, असावधानी से हो गया हो तो प्रतिक्रमण अवश्य करे।

प्रतिक्रमण से समस्त वैभाविक परिणतियों से विरत होकर साधक अन्तर्मुख बन जाता है। कायोत्सर्ग से चचंलता का निरोध होता है। प्रमाद से होने वाली भूलों के घाव पर कायोत्सर्ग मरहम है। इसमें देहाध्यास छूट जाता है। देह में रहते हुए भी साधक देहातीत बन जाता है। भेद-ज्ञान का विकास होता है। कायोत्सर्ग में चतुर्विंशतिस्तव का ध्यान किया जाता है। स्थिरता से प्रत्याख्यान की चेतना जागती है। इस विराट् विश्व में इतने अधिक पदार्थ हैं, जिनकी परिगणना संभव नहीं। उन सबका भोग एक व्यक्ति के लिये संभव नहीं। मानव की इच्छाएँ अनन्त हैं। सब कुछ पा लेना चाहता है। अमित आकांक्षाओं के कारण वह अशांत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशांति निवारण का उपाय है प्रत्याख्यान। यह क्रम व्यवस्थित एवं बुद्धिगम्य है। समता से प्रत्याख्यान तक की यात्रा विकास का आरोहण है।

आवश्यक के दो प्रकार हैं- द्रव्य और भाव। अन्यमनस्क होकर शब्दों का उच्चारण करना द्रव्य आवश्यक है। जहाँ क्रिया और चेतना का संयोग हो, वह भाव आवश्यक है। 'द्रव्य-आवश्यक' में केवल यांत्रिकी क्रिया है, उससे साधना में तेजस्विता नहीं आती। यह प्राणरहित साधना है।

द्रव्य में क्रिया का अन्धानुकरण है। एक ग्राम में पंडित जी प्रतिक्रमण करवा रहे थे। कहाँ उठना, कहाँ बैठना, लोग उनका अनुकरण कर रहे थे। पंडितजी को मिरगी का दौरा पड़ा । नीचे गिर गये। मुख में झाग आ गये। लोग भी यह देखकर सारे गिर पड़े। अनेक प्रयास करने पर भी मुख पर झाग नहीं आ सके। मन में अनुताप रह गया कि हमारी विधि पूरी नहीं हो सकी। द्रव्य क्रिया में ऐसा ही होता है।

भाव में उपयोग पूर्वक क्रिया होती है। वह लोकोत्तर साधना है। जीवंत साधना है। धर्म में उसकी मूल्यवत्ता है। भाव-क्रिया समता की पर्याय है। समता से आत्मशक्तियों को केन्द्रित करके महान् ऊर्जा को प्रकट किया जा सकता है। द्वन्द्वों में संतुलन रखना नहीं आता वहाँ तनाव बढ़ता है, व्यक्ति खंडित हो जाता है। समता के अभाव में उपासना उपहास बन जाती है।

जैनेतर धर्मों में प्रतिक्रमण

जैन धर्म की तरह अन्य परम्पराओं में भी पाप मुक्ति के लिये अलग-अलग तरीके हैं -

बौद्ध धर्म में 'प्रावरणा' शब्द का प्रयोग है। बुद्ध ने कहा- "जीवन में निर्मलता के लिये आलोचना कर पाप से मुक्त हुआ जा सकता है।"

वर्षावास के बाद भिक्षु संघ एकत्रित होता है। अपने कृत दोषों का गहराई से निरीक्षण करता है। वर्षावास में क्या-क्या दोष लगे, यह प्रावरणा है। इसमें दृष्ट, श्रुत, परिशंकित, पापों का परिमार्जन किया जाता है। परस्पर विनय का अनुमोदन होता है। सर्वप्रथम भिक्षु उत्तरासन को अपने कंधे पर रखकर कुक्कुट आसन में स्थित होकर हाथ जोड़ कर संघ से निवेदन करता है- मैं दोषों का आपके सामने प्रावरणा कर रहा हूँ। संघ मेरे अपराधों को बताये, मैं उनका स्पष्टीकरण करूँगा। इसे वह तीन बार दोहराता है। उसके बाद उससे छोटा भिक्षु, फिर सभी भिक्षु दोहराते हैं। अपने पापों की इस प्रकार पाक्षिक शुद्धि होती है। प्रावरणा चतुर्दशी, पूर्णिमा को की जाती है।

वैदिक धर्म में संध्या का विधान है। यह धार्मिक अनुष्ठान है, जो प्रातः सायं दोनों समय किया जाता है। इस संध्या में विष्णुमंत्र के द्वारा शरीर पर जल छिड़क कर शरीर को पवित्र बनाने का विधान है। संध्या में अपने पाप की मुक्ति के लिए प्रभु से प्रार्थना की जाती है।

पारसी धर्म में 'खोर देह अवेस्ता' ग्रन्थ में कहा है- "मेरे मन में जो बुरे विचार उत्पन्न हुए हों, वाणी से तुच्छ भाषा का प्रयोग किया हो, शरीर से अकृत्य किया हो, जो भी मैंने दुष्कृत्य किये हैं, मैं उसके लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात्ताप करता हूँ। उन्हें सरल हृदय से प्रकट करता हूँ एवं उनसे अलग होकर पवित्र होता हूँ।"

ईसा ने कहा- "पाप को प्रकट करना आवश्यक है। पाप को छिपाने से बढ़ता है। प्रकट करने से कम होता है, नष्ट हो जाता है।

मुसलमानों में पाँच बार नमाज पढ़ने की पद्धति है। पाप शुद्धि के लिये किसी ने विस्तार से, किसी ने समास से व्याख्या की, पर अनिवार्यता सबमें देखी जाती है।

उक्त सारी क्रियाओं के पीछे आधार आत्म-शुद्धि का ही है।

वर्ष के तीन सौ साठ दिन होते हैं। उनमें छह तिथि-कम हो जाती है। रात्रिक प्रतिक्रमण ३५४, दैवसिक ३२९, पक्खी के २१, चौमासी पक्खी के ३ और सांवत्सरिक १ प्रतिक्रमण होता है।

संदर्भ

१. आवश्यकवृत्ति गाथा २, पृष्ठ ५३
२. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२४४
३. बृहद्वृत्ति, पत्र ५८०
४. आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति
५. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १२६८
६. महावग्ग, पृष्ठ १६७
७. खोर देह अवस्ता, पृ. ५/२३-२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org